International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 3, March - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

संत कवि कबीर में भावात्मक रहस्यवाद

डॉ०रजनी रानी
उच्चत्तर माध्यमिक शिक्षिका
के०पा०प्रो०क०उ०मा०विद्यालय
पूजहाँ पटजिरवा, पश्चिम चम्पारण

सृष्टि के मूल में परम तत्त्व की जिज्ञासा है। ज्ञान के शिखर पर ज्ञाता और श्रेय, भाव के सागर में आश्रय और अवलम्बन तथा साधना की तपोभूमि पर साधक और साध्य मिलकर एक हो जाते है। रहस्यवादी के अंदर ज्ञान, भाव और कर्म का एकीकरण हो जाता है। वह ज्ञानयोगी, प्रेमयोगी और कर्मयोगी के समकक्ष हो जाता है। अतः रहस्यवाद की साधना को पूर्ण योग या सर्वांग साधना कह सकते हैं। वास्तव में रहस्यवाद परमतत्व के प्रतिभ्य ज्ञान एवं अनिर्वचनीय अनुभूति की दार्शनिक भावात्मक् साधानात्मक अभिव्यक्ति है।

न्यूमेन ने कहा है कि यदि आत्मा को उच्चतर आध्यात्मिक कृतार्थता को उपलब्ध करना है तो उसे नारी का स्वरूप धारण करना पड़ता है चाहे वह कितनी भी पौरूष सम्पन्न हो इतना ही नहीं संत कवि कबीरदास ने भी अपने साहेब को सम्बोधित करते हुए कहा कि हमारे या तुम्हारे बीच में कोई और शक्ति नहीं। तुम्हीं वह पति हो जिसकी हम नारी है–

''हम तुम बीच भया नहीं कोई।
तुमहि सो सन्त नारि हम सोई।''[1]

दादू ने भी कहा कि हम सभी कोई उस एक पति की पत्नियाँ है और उसी के लिए अपना श्रृंगार किया करते हैं–

''हम सब नारी एक भरतार सब कोई तन कैर श्रृंगार।''[2]

(बानी (ज्ञान सागर) पृ० 222

संत कवियों में भावात्मक रहस्यवाद के तीन सोपान है–परम–तत्व से परिचय, प्रेम और तादात्म्य। परिचय से प्रेम और प्रेम से तादात्म्य पृथक नहीं है। अतः संत कवियों के अनुसार ही भावात्मक रहस्यवाद का निरूपण उचित होगा, कठघरे में वॉट कर नहीं।

संत कबीर – प्रथम परमात्मा के जीवात्म का को अष्ट प्रहर रूपी हाथों की बनी पंचतत्व रूपी पाँच रंगों से रंगी चुनरी प्रेमोपहार स्वरूप भेंट की जिसको झमका कर जीवात्मका प्रेमगर्विता नायिका बन गई। इस श्रृंगार पट के ऑचल में सूर्य, चन्द्र और तारों की जगमग ज्योति होने के कारण वह रूपगर्विता भी हुई। उस चुनरी की छवि का वर्णन इस प्रकार है:–

''चुनरिया हमारी पिय ने सॅवारी, कोई पहिरे पिया की प्यारी।
आठ हाथ की बनी चुनरिया पंच रंग पटिया पारी।
चँद सुरज जाये आँचल लागे जगमग ज्येति उजारी।
बिनु ताने यह बनी चुनरिया दास कबीर बलिहारी''।[3] इतना ही नहीं कबीर प्रियतम के महान प्रेम की कीमत चुकाने के लिए सर्वत्र निछावर करने में भी बड़े विनम्र थे–

''मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौपते क्या लागेगा मोर।।''[4]

कबीर ने अपना सब कुछ अपने प्रियतम को सौंप दिया हैं जीवात्मा प्रियतम के बिना तड़पती हुई कहती है कि न दिन को चैन है ओर न रात को नींद। तड़प–तड़प कर भोर करना पड़ता है। मेरा मन–तन चक्र सा नाचता रहता है, प्रियतम के बिना सूने सेज पर छिया छिया कर के करवट लेना पड़ता है। आँखे थक गई है। रास्ता नहीं सूझता बेदर्द प्रियतम, तुमने हमारी सुध नहीं ली। अब भी हमारी पीड़ा हरो, विरह–दुख ने बड़ा जोर लगाया है–

''तलफे बिन बालम मोरा जिया।
दिन नहीं चैन रात नहीं निदिंया, तलफ–तलफ के भोर किया
तन मन मोर रहट अस डोलै, सून सेज पर जनम छिया

नैन थकित भये पंथ न सूझे, साँई बेदरदी सुध न लिया।''

प्रेम स्वयं एक साधना है जिसको निभाना कठिन है , कबीर के अनुसार साई का लगन कठिन है। प्यासा पपीहा प्यास से व्याकुल हो तड़पता है पर दूसरा जल नहीं पीता। मृग संगीत का प्रेम नहीं छोड़ता, भले ही उसके लोभ में उसे व्याधा के हाथों प्राण सौंपना पड़े। सती, आग से नहीं डरती पति के शव के साथ हँसते हुए चिता में बैठ जाती है–

''जैसे पपीहा प्यासा बूँद का, पिया पिया रह लाई।
प्यासे प्राण तड़पे दिन–राती, और नीर न भाई
जैसे निरग शब्द सनेही शब्द सुनत को जाई।
जैसे सती चढ़े सत ऊपर, पिया के राह मन भाई।
पावक देख डरे वह नाहीं, हँसत बैठे सदा माई'' ।''[6]

कबीर दास के प्रेम के आदर्श साधु, सती और शूर है जिनकी कोई बराबरी नहीं कर सकता ये निडर होकर आगम पंथ पर कदम बढ़ाते हैं। विचलित होने पर इनके लिए कहीं जगह नहीं। ये कभी पीठ नहीं दिखाते इनका खेल अपनी आन पर चलता है–

''साधु सती और सूरमा इन परतर कोड़ नाहीं।
अवाम पंथ को पेश धरे, डिग तो कहाँ समाहि।''[7]

कबीर के अनुसार प्रेम का पीड़ एक विरहिनी ही जान सकती है। विरहिनी अधीर होकर मारी–मारी फिरती है। प्रसव की पीड़ा जैसे बाँझ नहीं जानती वैसे ही विरहिनी की व्यथा राम विरह–शर का मारा ही बता सकता है। इसे या तो चोट सहने वाला जानता है या घायल करने वाला। मछली की तरह तड़पने वाली बिरहिनी सखियों से कहती है कि कोई मुझे राम से मिलाओ।

''बिरहिनी फिरै है नाथ अधीरा
उपजि बिना कछू समझिन परई, बाँझ न जाने पीरा
या बड़ बिथा सोई मल जानै राम–विरह सर मारी
X X X X

दीन भई बूझै सखियन को, कोई मोहि राम मिलावै।।

(स०सु० सा० 1, पृ० 80)

विरह तो बिरहिणी के तन को बाजा बनाकर नित्य उसके रंग रूपी तार को झंकृत करता है जिसको साई का चित्त ही सुनता है और कोई नहीं। प्रीति धुल धुल कर बिरहिनी के मन में इस प्रकार पैठ गई कि अब तो रोम–रोम से पिउ–पिउ की आवाज निकलती है, मुख से उच्चारण करने की क्या आवश्यकता–

''सब रग ताँत रबाब तन, विरह बजावै नित्य।

और न कोई सुनी सके, कै साई के धित्त''[9]

विरह की पीडा तीव्र होने पर कबीर की बिरहनि कहती है कि या तो मृत्यु दे दो या अपना आपा दिखाओ। आठो पहर का जलना मुझसे सहा नहीं जाता। हृदय में भीतर जलन है पर धुआँ प्रकट नहीं होता। या तो इसे आग सेजलने वाला जानता है या जलाने वाला–

'' कै विरहिन को नील है, कै आपा दिखलाया।

आठ पहर का दाझना मोपे सहा न जाय।''[10]

विरह की पीड़ा में रोने से बल घटता है तो हँसने से राम रूष्ट होते हैं। अतः विरहिनी मन ही मन विसूरती रहती है जैसें काष्ठ को घुन खाता है। विरह रूपी भुजंग ने कलेजे में घाव कर दिया तब भी विरहिनी अंग नहीं मोड़ती, चाहे वह जैसे खाय। कबीर का विरगिनी विरह की असहाय ताप में तापित होकर भी दूसरे को अपने स्वार्थ से जलाना नहीं चाहतीं वह कहती है कि विरह की आग से जलती हुई जब मैं तालाब के निकट जाती हूँ तो मुझे देखते ही वह स्वयं जलने लगता है। हे संतगण!मैं इसे अब कहाँ जाकर बुझाऊँ। प्रेम की ज्वाला से जलती हुई दुखित हो रही हूँ । मैं पेड़ों की छाया में इसलिए नहीं जाती कि कहीं वे भी न जल उठे–

''विरह जलाई मैं जलों, जलती जल हरि जाऊँ।

मो देखया जल हरि जले, संतों कहाँ बुझाऊँ।। [11]

कहते हैं दर्द का हद से गुजरना दवा हो जाना है। विरहिनी के लिए विरह दर्द है तो दवा भी। उसके घाव पर वह मलहम का काम करता है। कबीर की विरहिनी कहती है कि मैं विरह की आग में जलने वाली ओ लकड़ी हूँ और बहुत धीरे–धीरे धूमिल होती रहती हूँ। यदि एकबारगी जल जाऊँ तो विरह भी जाता रहेगा । इस शरीर को जलाकर मैं कोयला कर दूँगी, जिससे इसका धुँआ आकाश तक पहुँच जाय, किन्तु कहीं ऐसा न हो कि राम मेरे ऊपर कृपा करके उस पर वर्षा करने लगे और यह बुझ जाए–

विरहिनी ओठी लाकड़ी सपने और धुँधुआय।
छूटि पड़ौ या विरह त, सारी ही जलि जाए।
(कबीर पृ०108)

कबीर की जीवात्मा तो अखंड सुहागिन है उसने तो हाथ में अंचल सौभाग्य का चिन्ह सिंघोरा ले रखा है। वह मरने से क्यों डरे उसे तो इसकी उत्कंठा है कि कब मरूँगी और कब आत्मा–परमात्मा को पाकर पूर्ण परमानंद प्राप्त करेगी। उसके लिए लोक नैहर है तो परलोक ससुराल। वह परलोक रूपी ससुराल में अपनी पियतम की खोज में चली है। उसके जी में यही चिन्ता है कि मेरा यार नित्य मेरे पास ही रहता है और उसको देख नहीं पाती। जब चारों और विकल होकर दौड़ने पर भी कंत को नहीं पाती तो किस तरह धैर्य धारण करूँ ? मेरे हाथ से मानो मेरा हीरा भूल गया है। जब मेरी आँखों के आगे से अज्ञान का आवरण हट गया तो मेरे मस्तिष्क गगन में ही मेरा साँई दिखाई पड़ा। तब नयनों में मेरे यार का बास हो गया–

''चली मैं खोज में प्रिय की । मिटी नहिं सोच यह जिय की।''
रहे नित पास ही मेरे । न पाऊँ यार को हे रे।
विकल चहुँ ओर को धाऊँ । तबहुँ नहिं कंत को पाऊँ।

इस पद में भावात्मक हरस्यवाद के साथ–साथ साधनात्मक रहस्यवाद की झाँकी है। यहाँ बिरहिनी के मन में उठ रहे उस भाव का चित्रण किया गया है जिसमें उसे अपने प्रियतम से मिलने की चाहत हैं वह शदी सुदा तो है लेकिन अभी तक अपने प्रियतम से मिल नहीं पाई है उस व्याकुलता को निम्न पद में दशार्या गया है। गौने के दिन नजदीक आने पर

विरहिनी में उल्लास आ गया है। डोली उठाकर वहाँ ले जाने तैयारी है जहाँ के बीच में कोई अपना नहीं। विरहिनी कहारों के पॉव पड़ते हुए कहती है कि सखियों और परिवार वालों से मिल लेने दो जिनका मोह नहीं जाता । इस पंक्ति में उसके मनोभावों का सफल अंकन है–

''आयौ दिन गौने कै हो, मन होत हुलास।
डोलिया उतारे बीच बनव हों, जहाँ कोई न हमार।''[13]

कबीर ने जीवात्मा को बताया कि अंतरपट को खोलो तो पीव मिलेंगे। तेरा साईं तो घट–घट में रमता है। अतः किसी से कटु बात मत करो। धन यौवन का गर्व करन मिथ्या है। मस्तिष्क के शून्य में दीपक जलाओ, आशा ठगिनी का भरोसा मत करो। जीवात्मा ने योग की युक्ति से शरीर के रंग महल में ही अनमोल प्रियतम को पा लिया जिसमें आनन्द ढाल बन रहा है–

''को तो पीव मिलेंगे, घूँघट के पट खोल रे।
घट–घट में वहीं साईं रमता कटुक वचन मत बोल रे।
X X X X
जोग जुगत सो रंग महल में, पिय पाई अनमोल रे।
कहै कबीर आनंद भयो है बाजत अनहद ढोल रे।''[14]

इतना ही नहीं कबीर दास ने आध्यात्मिक विवाह का संश्लिष्ट चित्र खींचा है। राजा राम दुलहा बन कर आये तो जीवात्मा रूपी दुलहिन ने अन्य आत्मा रूपी सखियों से मंगलगीत गाने का निवेदन करते हुए कहा कि मैं तो तन के साथ मन को भी अपने रामदेव में लीन कर शरीर के पंचभूतों को बारात में शामिल करूँगी। मैं यौवन की मदमाती हूँ। ब्रह्मा वेद पढेंगे। मैं शरीर को वेदी बनाकर रामदेव के साथ गाठ–बाँधकर परिक्रमा करूँगी। हमारा भाग्य धन्य है कि तैतीस करोड़ देवता और अठासी सहस्त्र ऋषि बराती बन कर आये हैं हम तो एक अविनाशी पुरूष से ब्याह करने चले हैं–

''दुलहिन गावहू मंगलाचार।
हम घर आये हो राजा राम भरतार।।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 3, March - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell’s Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

x x x x

सुर तैंतीस कोटिग अये मुनिवर सहस अठासी।

कहे कबीर हम ब्याहि चले हैं पुरूष एक अविनासी।''[15]

अद्वैत की स्थिति प्राप्त होने पर प्रियतमा साधिकार अपने प्रियतम से आग्रह करती है कि अब तुम्हे जाने नहीं दूँगी, हे राम पियारे, जैसे भावे मेरे होकर रहो। लम्बे विरह के बाद तुम्हे पाया। यह तो मेरा सौभाग्य है कि तुम घर बैठे आ गये। अब प्रेम के जोर में तुम्हें उलझा कर रखूंगी। अब मेरे मन मंदिर नई प्रीति करते रहो जाने के पीछे मत पड़ो–

''अब तोहे जानि न देहो राम पियोर

क्यूँ भावै व्यूँ होऊ हमारे

x x x x

चरनन लागि करौ बरियाई प्रेम प्रीति राखौ उलझाई।

इत मन मंदिर रहौ नित चोखे कहै कबीर परहु मत धोखे।''[16]

''डॉ० कामेश्वर शर्मा ने भी स्वीकार किया है कि कबीर का रहस्यवाद साधनात्मक से अधिक भावात्मक है।''[17]

जिसकी पुष्टि कबीर ने अपने हाथों कई रचना पर किया है। अभिसारिका प्रियतम से मिलने की रपटीली रहा में डगमगाने लगती है, नैहर की जाल जाती नहीं कुल की मर्यादा का विचार कर मन में संकोच होता है कहती है– हे प्रिय! समागम कैसे करें? पिया के ऊँचे महल को देख कर खड़ी ही रह जारी हैं इसी समय सतगुरू दूती वन कर आते हैं ओर प्रियतम प्रियतमा को गले लगाती है–

मिलना कठिन है केसे मिलौंगी पिय जाय।

समझि सोच पत्र धरौं जतन से, बार–बार डिग जाय।।

x x x x

लोक लाज कुल की मार्यादा, देखत मन सकुचाये

नैहर बास बसौ पीहर में, लाज तजि नहीं जाए।

x x x x

दूती सतगुरू मिले बीच में, दीन्हों भेद बताए।

साहब कबीर पिया से भेटयौ, सीतल कंठ लगाय।''[18]

सुहागिनी विरहिनी अभिसारिका बनकर आरती साज कर अपने प्रियतम को ढँढने चली। उसकी चुनरी प्रेम रस से भीग रही है–

''भीजै चुनरिया प्रेम रस बूँदन।

आरती साज के चली है सुहागिनी, प्रिय!

अपने को ढूँढन ।।''[19]

विरहिनी प्रियतम की अटारी पर पहुँचकर भी लज्जा और संकोच के कारण सीढ़ियों पर नहीं चढ़ि पाती। थकी होने के कारएण थहरा कर गिर गिर जाती है–

''पिया मिलन की अस रहौ कब लौं खरी।

ऊँचे नहीं चढ़िजाय मने लज्जा भरी

पॉव नहीं ठहराय, चढ़ूँ गिर –गिर पड़ू।

फिरि–फिरि चढ़हुँ, सम्हारि चरन आगे धरूँ।'[20]

इतना आधुनिक कवियों में भी कबीर के भावात्मक रहस्यवाद की छवि दिखाई पड़ती है। जिसकी स्पष्ट छवि महादेवी वर्मा में देखने को मिलता है। महादेवी वर्मा को प्रियतम का वाण चूभते ही कण–कण से सजल गान फूटते सुनाई पड़ते हैं अंधकार का सागर अथाह स्वर्णिम किरणों में हिलोरे लगाने लगता है। महादेवी वर्मा ने भी अपने प्रियतम से कहा–

तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा, तुममें ढूँढूँगी पीड़ा।

उनका प्रियतम भी अंधकार में आता है। इसलिए वे निवेदन करती हैं–

करूणामय को भाता है तम के परदों में आना।

हे! नभ के दीपावलियों तुम पल भर को बुझ जानां''[21]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीर ने भावात्मक रहस्यवाद की जो सृष्टि की है वह उस लोक का मानवीय गुण है और वह किसी न किसी रूप में आज भी विराजमान है। जिससे सृष्टि की संरचना निर्भर करत है। यही भावात्मकता ही इस संसार का जनक

है जो वर्षों से हमारे बीच है। बिना भाव को हम इस विश्व की परिकल्पना भी नहीं कर सकते जो हमें जीवन की राह पर आगे बढ़ने की निरंतर प्रेरणा देती है। चाहे वह निरपेक्ष हो या फिर सापेक्ष। यह उस जगत का आधार है उसके बिना जीवन बेकार ही नहीं बेजान भी है।

संदर्भः

1. कबीर वचनावली – सम्पादक– अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, दसवां संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० –212
2. संतवाणी संग्रह– डेल्वेडियर प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, पृ० –222
3. कबीर– हजारी प्रसाद द्विवेदी, चतुर्थ संस्करण, पृ०–187
4. कबीर वचनावली– सं० अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, दसवां संस्करण, नागरिप्रचारिणी सभा काशी, पृ० 145
5. कबीर वचनावली – सम्पादक– अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, दसवां संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० 213
6. कबीर : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 270
7. संतबाणी संग्रह– पृ० 220
8. ” पृ० 80
9. कबीर वचनावली – सम्पादक– अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, दसवां संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा काशी – पृ० 109
10. कबीर वचनावली – सम्पादक– अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, दसवां संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ० 107
11. कबीर ग्रंथावली : डा० माता प्र० गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ० 10
12. कबीर : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 329

13. कबीर : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 274
14. कबीर वचनावली – सम्पादक– अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, दसवां संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० 209
15. संतवाणी संग्रह– पृ० 63
16. कबीर– हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 332
17. बोध और व्याख्या : सम्पदक–गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ० 321
18. कबीर वचनावली – सम्पादक– अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, दसवां संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा काशी – पृ० 209
19. शब्दावली – पृ० 9
20. कबीर वचनावली – सम्पादक– अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, दसवां संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा काशी – पृ० 213
21. सदानीरा : महादेवी वर्मा, पृ० 16

* * * * *